शम्पा शाह

पाबूजी की पड़

एक अनूठा चलचित्र

ज़रा गर्मियों के वो दिन तो याद करो जब रोज़ रात को एक-डेढ घण्टे के लिए बिजली गुल हो जाती थी – कूलर, पंखा, टी.वी. सब बन्द। पढ़ना-लिखना, सारे कामकाज ठप्प। करो तो क्या? खैर, दो-चार दिनों में सबने वक्त बिताने का अपना-अपना तरीका खोज लिया। आधा मोहल्ला उस समय सड़क पर टहलता नज़र आता। मोमबत्ती की रोशनी या फिर चाँदनी रात में छत या बगीचे में खाना होता। फिर किस्से-कहानियों का दौर चल पड़ता। और जो कभी भूतों के किस्से निकल पड़े तो उस मज़े का कहना ही क्या। कई घरों में उस समय पूजा होने लगती। आरती करते हुए उजाले का एक छोटा-सा घेरा घूमता, पल भर के लिए कोई मूरत दिखती और फिर उसके पीछे भागती उसकी परछाईं नज़र आती। अँधेरे में ऊपर-नीचे जाता दिया देवताओं में जैसे जान फूँक देता। यह तो थी शहरों की बात लेकिन हमारे देश के अधिकतर गाँवों में तो बिजली हमेशा ही गुल रहती है। सूरज डूबते ही अँधेरे में डूब जाने वाले हमारे गाँवों ने अपने मनोरंजन के कई तरीके सोचे। हमारे सिनेमा को आए तो अभी कुल जमा सौ बरस ही हुए हैं लेकिन उन्होंने अपनी तरह का चलचित्र यानी सिनेमा कई सौ बरस पहले बना लिया था। और हाँ, ये चलचित्र शुरू से ही रंगीन हैं। इसमें बाकायदा नायक, नायिका, खलनायक तथा अन्य पात्र होते हैं। अलग-अलग समय और जगहों पर घटी घटनाएँ होती हैं। संवाद, नाच-गाना होता है। एक और खास बात कि इन चलचित्रों की रील एक से दूसरे मोहल्ले या गाँव में ले जाई और दिखाई जा सकती है। यह रील कागज़ या कपड़े का लम्बा चित्रों भरा पट्टा होता है। जिसे बाँस पर लपेटकर रखा जाता है। इन चलचित्रों को पट-चित्र, नक्काशी-पटम्, जादू पटिया, चित्रकथी, थाप, पड़ या फड़ आदि नामों से जाना जाता है। यहाँ हम फड़ को देखते हैं।

पड़ या फड़ यानी क्या?

राजस्थान के गाँव-कस्बों में पड़ या फड़ का सिनेमा खूब चलता है। भील-भोपा जाति के लोग इन्हें दिखाते हैं। पड़ यानी कपड़े पर बना कई हाथ लम्बा-चौड़ा चित्र। एक हाथ यानी कोहनी से बीच की उँगली के ठेठ छोर तक की लम्बाई जो लगभग डेढ़ फुट होती है। लेकिन हाथ किसी बच्चे का नहीं बल्कि बड़े का होना चाहिए।

पड़-चित्रों के हीरो अक्सर लोक-नायक होते हैं। लोगों के मन में इन वीर, नेक नायकों के लिए बेहद प्यार और विश्वास है। इतना कि वे इन्हें देवता मानते हैं। कोई इच्छा पूरी हुई हो या पूरी करानी हो तो लोग इन्हीं के पास जाते हैं।

राजस्थान के नागौर ज़िले के लाम्बा गाँव में पड़ पढ़ते नारायणजी और उनके बेटे। नारायणजी यहाँ *दियाला* - दिया हाथ में रखने वाले - की भूमिका में हैं। आमतौर पर यह काम भोपी करती है।

शेर से लड़ते पाबूजी।

पड़ में वैसे तो कई किस्से बनते हैं पर लोगों का सबसे ज़्यादा भरोसा पाबूजी, देवनारायण और रामदेव पीर पर है। और इनमें भी पाबूजी की पड़ तो समझो लोगों के बीच पिछले 800 सालों से सुपर-हिट है। 3.5 फुट चौड़ी और 18 इंच लम्बी पाबूजी की पड़ में कुल 172 घटनाएँ हैं।

आज हमारे घर पड़ है

किसी का ऊँट बीमार हो या घर का कोई सदस्य, किसी ने ऊँट, भेड़ें खरीदी हों या ज़मीन लोग भोपों को पाबूजी या देवनारायण आदि की पड़ बाँचने के लिए बुला लेते हैं। सारे गाँववालों को खबर कर दी जाती है कि आज रात अमुक जगह पर, अमुक पड़ सुनाई जाने वाली है। बस फिर क्या, दिन भर के अपने काम-काज निपटाकर लोग वहाँ रात भर ठहरने की तैयारी से इकट्ठे हो जाते हैं। भोपा पड़ को बाँस और रस्सी से पर्दे की तरह तान देता है। भोपा और भोपी (उसकी पत्नी) मिलकर कहानी कहना शुरू करते हैं – एक लाइन भोपा गाता है तो दूसरी भोपी। भोपा के हाथ में रावण हत्था नामक बाजा होता है जिसे वह कमान या गज से बजाता है। रावण हत्था बजाते हुए भोपा कहानी को गाता भी है और बीच-बीच में नाचता भी है। भोपी हाथ में हैण्डल वाला दिया या ढिबरी लिए रहती है। कहानी कहते हुए पड़ में बने चित्र की घटना पर वो रोशनी डालती है।

अब ज़रा कहानी तो सुनो

राजा राव अस्थान जंगल से गुज़र रहे थे। वहाँ उन्हें तालाब में नहाती स्वर्ग की परियाँ दिखीं। उन्होंने उनमें से एक केसरपरी से ब्याह कर लिया। कुछ दिन बाद कोलू नामक गाँव के एक बगीचे में पाबूजी का जन्म हुआ। दाई ने देखा कि नवजात पाबू पर नागिन ने फन उठाकर छाया की हुई है। कुछ दिनों बाद राजा अचानक ही रानी के कमरे में घुस आए तो देखा पाबू को शेरनी दूध पिला रही हैं। केसरपरी को राजा का यूँ बिना दरवाज़ा खटखटाए अन्दर आ जाना अच्छा नहीं लगा। उसने पाबू को वचन दिया कि वह उसके पास फिर आएगी और आसमान में उड़ गई।

बड़े होकर पाबूजी ने एक-से-एक काम किए। सूखी, पथरीली ज़मीन में मीठे पानी के कुएँ खुदवाए। एक कुँआ तो आज भी कोलू गाँव में है। उन्होंने अपने चार दोस्तों के साथ मिलकर कई लड़ाइयाँ लड़ीं और लोगों की मदद की। पाबूजी ऊँच-नीच, जात-पात के सख्त खिलाफ थे। वे राजपूत थे और उनके दोस्त भील और राईका (ऊँट चराने वाले) थे।

इस पीर नायक पाबूजी को देवल चारणी ने अपनी उड़ने वाली घोड़ी केसर कालमी दी थी। शर्त थी कि वे सदा उसकी गायों व ऊँटों की रक्षा करेंगे। केसर कालमी और कोई नहीं, स्वयं पाबूजी की माँ केसरपरी थी। बाद में पाबूजी का ब्याह अमरकोट की राजकुमारी सोढी से होना तय हुआ। अभी चार ही फेरे हुए थे कि केसर ज़ोर-ज़ोर से हिनहिनाने लगी। पाबूजी समझ गए कि ज़रूर देवल चारणी के जानवरों पर मुसीबत आई है। वे फेरे अधूरे छोड़, केसर पर सवार हो भागे। ज़िन्दराव मौका देखकर देवल चारणी की सारी गाएँ व ऊँट ले गया था। भयानक युद्ध हुआ। कई ऐसे मौके आए जब पाबूजी ज़िन्दराव को मार सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया क्योंकि यह दुष्ट खलनायक उनकी बहन का पति था। इस घमासान लड़ाई में आखिर ज़िन्दराव मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ। पाबूजी देवल चारणी की गायों व ऊँटों को वापस ले आए। उसे दिया वचन तो पूरा हो गया लेकिन पाबूजी खुद बुरी तरह से घायल हो गए। केसर कालमी उन्हें पीठ पर बैठाए आकाश में लुप्त हो गई।

तुमको याद है ना कि पाबूजी की कथा में कुल 172 घटनाएँ हैं। यहाँ बताई कहानी तो समझो बस ट्रेलर है। पूरी कहानी कई रातों तक चलती है। एक रात में सिर्फ दो या तीन पर्चों (चमत्कारी घटनाओं) का ही ज़िक्र हो पाता है। पाबूजी की पड़ अक्सर एक साथ पूरी कभी नहीं सुनाई जाती। सुबह भोपा-भोपी पाबूजी की फोटो की पूजा करते हैं। वे उनसे ऊँट अथवा बीमार को ठीक करने, अच्छी फसल देने आदि की विनती करते हैं। पड़ बाँचने के लिए बुलाने वाला भोपों को बाजरा, गुड़, कपड़ा, पैसा आदि देता है।

एक तरह से पड़ चलते-फिरते मन्दिर हैं जिनके पुजारी ये भील-भोपे होते हैं। सोचो कि बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में हुए ये नायक आज भी अपने लोगों के काम कर रहे हैं। पड़ जब पुरानी होकर फटने लगती है तब भोपे इन्हें पुष्कर ताल में विसर्जित कर देते हैं।

बनाता कौन हैं इन्हें

मज़े की बात है कि कहानी तो भोपे कहते हैं लेकिन ये खुद पड़ नहीं बनाते। शाहपुरा, भीलवाड़ा तथा चित्तौड़ के कपड़ों की रंगाई-छपाई करने वाले नामदेव छीपा या जोशी समुदाय के लोग इन्हें बनाते हैं। पड़ कितनी लम्बी-चौड़ी होगी, कौन-सी घटना कहाँ बनेगी यह सब भोपा तय करता है। पुराने ज़माने में भोपा चित्रकार को एक रुपए का नेग देकर काम शुरू करवाता था। चित्रकार हल्के पीले रंग से पूरे चित्र की मोटी-मोटी रूपरेखा भोपे के सामने ही तैयार कर देता है। इसके बाद भोपा अपने गाँव लौट जाता है तथा एक महीने बाद तैयार पड़ को लेने आता है। पड़ में पाँच रंगों का पारम्परिक रूप से उपयोग होता है जिन्हें पीला, हरा, लाल, नीला व अन्त में काले के क्रम में लगाया जाता है। एक बार में एक ही रंग लगाया जाता है – यानी पूरी पड़ में जहाँ-जहाँ भी हरा रंग लगना होगा वह लग जाने के बाद ही लाल रंग की बारी आएगी। अन्त में काले रंग से सभी आकारों की आउट लाइन बनेगी। सबसे बाद में आँख बनाई जाती है। हरा रंग ताँबे को चूने के पानी में गलाकर, नीला रंग नील से, पीला पिउड़ी से, लाल सिन्दूर तथा अन्य पिगमेन्ट से, काला कालिख से तैयार होते हैं। इन्हें गोंद में घोलकर तैयार किया जाता है।

आज राजस्थान में पड़ बनाने वाले गिने-चुने परिवार बचे हैं और भोपों को भी लोग पहले की तुलना में कम बुलाते हैं। लेकिन फिर भी आठ-दस गाँव घूमने पर आज भी आपको कोई न कोई भोपा परिवार अपना बोरिया-बिस्तरा और पड़ का रोल लिए दिख ही जाएगा।

शाही दरबार में बैठे पाबूजी।

नारायणजी भोपा घर में अपने जन्तर और लपेटे हुए पड़ के आगे हाथ जोड़ते हुए।

सभी चित्र साभार: *पिक्चर शौमैन - इन्साइट्स इनटु द नैरेटिव ट्रेडिशन इन इंडियन आर्ट*